ज़िन्दगी का सिस्टम

लेखक : आयतुल्लाहिल उज़मा सय्यदुल उलमा मौलाना सै0 अली नक़ी नक़वी
सम्पादन : नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

(क़िस्त : 17)

जब ख़ुदा का कोई मिस्ल/उपमा नहीं तो इसके माने यह हैं कि उसका कोई बेटा नहीं । तीसरी तरफ़ हर वह मज़हब ग़लत साबित होता है जो ख़ुदा के किसी निजी कमाल (पूरेपन) में दूसरी चीज़ों की मिस्ल ठहराए चाहे क़दामत (बिल्कुल शुरू से होना) के लेहाज़ से माद्दे (Matter) और रूह को ख़ुदा का मिस्ल बनाना जो आर्यो का विश्वास है। या इल्म/ज्ञान और कुदरत (सकत) जैसे गुणों को उसकी ज़ात के अलावा समझना यानी यह समझना कि यह सिफ़तें ख़ुदा की ज़ात से अलग हैं और पहले से मौजूद हैं। जैसा कि बहुत सी इस्लामी जमाअत (वर्ग) अपनी नादानी की वजह से इस बात की क़ायल हो गई हैं। इन सबको ग़लत साबित करने के लिए यह वाक्य "*व–लम् य–कुल्लहू कुफ़ु अन् अ–हद*" काफ़ी है।

शरीयत में सूरह 'कुल्हु वल्लाह की ख़ास बात

ये पहले कहा जा चुका है कि *'कुल्हुवल्लाह'* को एक तिहाई (1/3) क़ुर्आन का दरजा मिला हुआ है मगर ये सूरह के मानी, मतलब और फ़ज़ीलत श्रेष्ठता के लेहाज़ से है, इसका असर शरीयत के हुक्मों पर नहीं पड़ता, यानि अगर कोई क़ुर्आने मज़ीद पढ़ने की नज़्र/मन्नत माने या उसे परिश्रमिकी पर क़ुर्आन पढ़ना हो तो उसे तीन मर्तबा *कुल्हुवल्लाह* पढ़ लेना हरगिज़ काफ़ी नहीं होगा। फिर भी *'कुल्हुवल्लाह'* को शरीयत के हुक्मों के लेहाज़ से कुछ ख़ास अहमियत है। नमाज़ में अगर सूरह हम्द के बाद सूरह *'कुल्हुवल्लाह'* पढ़ना चाहता हो और इत्तेफ़ाक़ से कोई दूसरा सूरह शुरू कर दे तो उस सूरह को छोड़ कर *'कुल्हुवल्लाह'* पढ़ सकता है, लेकिन अगर कोई और सूरह पढ़ना चाहता था और इत्तेफ़ाक़ से 'कुल्हुवल्लाह' शुरू कर दे तो फिर उसे बीच में छोड़ के कोई दूसरा सूरह नहीं पढ़ सकता। इसके मानी ये हैं कि ये हर सूरह की जगह ले सकता है, मगर कोई दूसरा सूरह इसकी जगह नहीं ले सकता। मगर याद रहे कि ये बात उसी वक़्त सही होगी जब वह अपनी जगह पर हो यानि सूरह हम्द के बाद हो लेकिन अगर सूरह हम्द की जगह ग़लती से सूरह 'कुल्हुवल्लाह' शुरू कर दे तो उसे बीच में छोड़ कर सूरह 'हम्द' पढ़ना ज़रूरी है क्यों कि वह सूरह हम्द' की जगह हरगिज नहीं ले सकता। सूरह 'हम्द' अपनी ख़ासियत में अकेला है और 'कुल्हुवल्लाह' को भी वह ख़ासियत नहीं है।

ये सूरह *'कुल्हुवल्लाह'* की अहमियत ही है कि इमाम जाफ़र सादिक़ (अ0) ने उसे एक सांस में पढ़ने को नापसंद ठहराया है।

कुछ सूरो के पढ़ने के बाद कुछ मुस्तहब (सुन्नत) वाक्यों का पढ़ना

सूरों को पढ़ने में ध्यान को बाक़ी रखने के लिए और उसका इन्सान के दिल पर जो असर पड़ता है उसके ज़ाहिर करने के लिए क़ुर्आन के कई सूरों को पढ़ने के बाद कुछ बोल कहने को कहा गया गया है, जिनकी बातें मासूम इमामों (अ0) की हदीसों में मौजूद है और इमाम (अ0) ख़ुद उस पर चलते थे। उन वाक्यों और शब्दों को नीचे बयान किया जा रहा है जिनका पढ़ना कुछ सूरों के बाद 'मुस्तहब' (सुन्नत) है।

सूरह *'कुल्हुवल्लाह'* के बारे में इमाम रिज़ा (अ0) का तरीक़ा था कि जब आप पहली आयत, *'कुल्हुवल्लाहों अ–हद'* पढ़ते थे, जिसका मतलब ये हुआ कि ख़ुदा का हुक्म बन्दे को, कि कहो, वह अल्लाह एक है, तो आप इस हुक्म की तामील में आहिस्ता से कहते थे *'कुल्हुवल्लाहु अ–हद'*, और सूरह ख़त्म करने के बाद तीन मर्तबा कहते थे, *"कज़ालि–क*

रब्–बना'', ये बन्दे की तरफ़ से उस हुक्म की सच्चाई में कहना है कि सूरह *'कुल्हुवल्लाह'* में खुदा के जो गुण बयान हुए है, वह असल में उसी तरह हैं। इस बारे में बहुत सी हदीसों में यह पहली हदीस थी। दूसरी हदीस इमाम रिज़ा (अ0) की है, अब्दुल अज़ीज़ बिन मुहतदी ने आपसे 'तौहीद' (ईष्वर का एक होना) के बारे में पूछा। हज़रत (अ0) ने कहा, जो 'कुल्हुवल्लाहु अ–हद'' का सूरह पढ़ ले और उस पर ईमान (विश्वास) लाए, उसने 'तौहीद' को समझ लिया। उसने कहा, इस सूरह को पढ़ने का तरीक़ा क्या होना चाहिए? हज़रत (अ0) ने फ़रमाया कि कोई ख़ास तरीक़ा नहीं, जैसे पढ़ा जाता है, हाँ बाद में दो मर्तबा ''कज़ालिकल्लाहु रब्बी'' का बोल आपने बढ़ा दिया। इस हदीस को 'कुलैनी' ने अपने उस्ताद से और 'सद्दूक' ने 'किताबुत्तौहीद' में लिखा है।

तीसरी हदीस इमाम जाफ़र सादिक़ (अ0) की है, जिसमें आप (अ0) ने अपने वालिद/पिता इमाम मो0 बाक़र (अ0) का चलन बयान किया है कि जब आप(अ0) सूरह *'कुल्हुवल्लाह'* की तिलावत (पाठ) कर चुके होते थे तो कहते थे, *''कज़ालिकल्लाह''* या फिर *''कज़ालिकल्लाहु रब्बी''*। चौथी हदीस फ़सील बिन यसार का बयान है कि मुझे इमाम मो0 बाक़र (अ0) ने हुक्म दिया कि मैं *'कुल्हुवल्लाह'* पढ़ूँ और सूरह के ख़त्म होने पर तीन मर्तबा कहूँ–

''कज़ालिकल्लाहु रब्बी ''

इन हदीसों में नमाज़ और नमाज़ के अलावा पढ़ने का अलग से कोई बयान नहीं है, इसलिए नमाज़ की हालत में भी इस बोल का कहना सही है। कम से कम एक मर्तबा उससे अच्छा है दो मर्तबा और सबसे अच्छा तीन मर्तबा है। दूसरे और सूरों के बाद जो लफ़्जें और जुम्ले कहना चाहिए वह नीचे दिये जा रहे हैं।

सूरह वश्शम्स'

इमाम जाफ़र सादिक़ (अ0) की हदीस है कि जब सूरह वश्शम्स' को ख़त्म करें तो , कहे– *''स–द–क़ल्लाहु व रसूलुह''*, चूँकि इस सूरह के आख़िरी जुम्ले ये हैं।–*''क़ा–ल लहुम रसूलुल्लाहि ना–क़तल्लाहि ....''*

इसलिए बन्दा *'' सदक़ल्लाहु व रसूलुहु''* कह कर खुदा के वादे (जो इस आयत में बयान हो रहा है) और उसके पैग़म्बर (स0) के कहने की सच्चाई करता है।

सूरह ''रहमान''

इसके बारे में कई रवायतों में आया है कि हर मर्तबा *'' फ़बि अय्–यि आलाइ रब्बिकुमा तुकज़्ज़िबान''* के बाद कहे *'' ला बशैइम् मिन आला–य–क रब्बि उकज़्ज़िब ''*

सूरह ''वत्तीन''

इसके लिए हुक्म है कि जब सूरह ''वत्तीन'' पढ़ो, तो कहो *'' व नह्नु अ़ला ज़ालिका मिनश्–शाहिदीन''* इस सूरह में इन्सान पैदा होने के बयान के बाद उसके अन्त को बताया गया है कि वह *अस्–फ़लुस्साफ़िलीन* (सब से ख़राब से भी ख़राब, सबसे नीच) में जाएगा, लेकिन अगर ईमान और अच्छे अमल कर्म करे तो उसे कामयाबी मिलेगी। आख़िरी आयत में पूछा गया कि क्या अल्लाह बेहतरीन हाकिम नहीं है? तो यहाँ पर बन्दों की तरफ़ से कहा जाता है कि ''हम सब इसके गवाह है''।

सूरह ''कुल्–याऐयुहल् काफ़िरून''

इमाम रिज़ा (अ0) से रवायत है कि जब आप *''कुल् या अय्युहल् काफ़िरून''* पढ़ते थे तो धीरे से कहते थे–*''या अय्युहल काफ़िरून''* ये खुदा के उसी हुक्म पर चलना है और जब सूरह पूरा होता था तो तीन मर्तबा कहते थे, *''अल्लाहु रब्बी व दीनिल्इस्लामु''* (अल्लाह मेरा पालनहार है और मेरा धर्म इस्लाम है)।

सूरह ''हम्द''

इसी तरह जब सूरह हम्द को पढ़ चुके तो फिर कहे *''अल्हम्दुलिल्लाहि रब्बिल्आ़–लमीन''*।

सूरह ''आला''

और जब सूरह ''आला'' पढ़े तो *''सब्बिहिस्–म–रब्–बिकल आ़ला''* के बाद धीरे से कहे *'' सुब्हान रब्–बीयल आला''*।

इसके अलावा जब कुर्आन की ये आयत *''अल्लाहु ख़ैरूम मा युश–रिकून''* पढ़े तो कहे–. *''अल्लाहु अल्लाहु ख़ैरून अल्लाहु अक्बर ''* और जब पढ़े *''सुम्मल्–लज़ी–न क–फ़रूबिरब्बिहिम यादिलून''* तो कहे *'' क–ज़–बल आदिलू–न बिल्लह''* और जब पढ़े *''अलहम्दु लिल्लाहिल्लज़ी लम् यत्ति ख़िज़ु व–ल–दन–व लम यकुल् लहू शरीकुन फ़िल मुल्कि व लम् यकुल् लहूवलीयम मिनज़्ज़ुल्लि व कबी–रतुन*

तकबीरा'' तो कहे *''अल्लाहु अक्बर अल्लाहु अक्बर अल्लाहु अक्बर''* और जब पढ़े *''इन्नल्ला–ह व मलाइ क–तु–हू यु–सल्लू–न अ–लन्नबी''* तो मोहम्मद व आले मोहम्मद पर दुरूद भेजे और जब पढ़े आ–मन्–ना बिल्लाहि तो कहे आ–मन्–ना बिल्लाहि और जब तब्बत य–द अबी ल–हबियूँ पढ़े तो अबू लहब के लिये बद दुआ करे और जब सूरह 'क़ियामत' पढ़े तो आख़िर में कहे सुबहा–न–कल्लाहुम्–मा व बला और जब पढ़े या अइयुहल्–लज़ीन आ–मनू तो चुपके से कहे लब्बै–क अल्लाहुम्–म लब्बै–क और जब पढ़े अलै–स–ज़ालिक बिक़ादिरिन अला अन युह इल मौ–त तो कहे सुबहा–न–क ल्लाहुमम् व बला।

ये सब इसीलिए है कि इन्सान क़ुर्आन की आयतों और उसके मानी पर ध्यान दे ताकि उसका असर अपने दिल में लेता रहे।

क़ुनूत

क़ुनूत के मानी 'दुआ' के हैं और दुआ के लिए नमाज़ में आम इजाज़त दी गयी है। हर जगह दुआ की जा सकती है, क्यों कि ख़ुदा की बारगाह में दुआ ख़ुद एक इबादत है, बल्कि हदीस में आया है कि *''अद्दुआउ मुख़ल्–इबादह''* यानि ''दुआ इबादत का 'सत्ता (गूदा) है जिस तरह फल में गूदे की हैसियत होती है''।

अगर आप ग़ौर करें तो ख़ुदा के स्वतन्त्र राजदरबार में अपनी नियाज़मन्दी (पराधीनता ज़रूरत) को ज़ाहिर करने को ही इबादत भक्ति कहते हैं और दुआ उस नियाज़मन्दी (हाजत) और ज़रूरत का एक Practical सबूत है।

इस्लाम ने माद्दियत (Materialism) में रूहानियत (Sprituality) को समोने का एक बड़ा मक़सद जो अपने सामने रखा था, 'दुआ' उसका एक कामयाब ज़रिया है क्यों कि इस तरह इन्सान अपने पूरे पूरे माद्दी मक़सद यानि सिर्फ़ दुनिया की चीज़ों को मांगने में भी ख़ुदा को याद करने पर मजबूर होता है।

मज़े की बात ये है कि बस अपना मतलब अपनी मांग चाहे वह आदमी की जानवरों जैसी चाहतों के पूरा करने ही का हो, लेकिन शर्त ये है कि वह गुनाह न हो, अगर बन्दा उसे 'सवाल' मांग की तरह अपने मालिक की बारगाह में पेश कर दे तो ये उसका पेश (प्रस्तुत) करना एक बेहतरीन इबादत और रूहानी आज्ञा पालन होगा। यूं तो नमाज़ में हर जगह इसकी (दुआ की) इजाज़त है मगर एक जगह ख़ास तौर से इसके लिए रखी गयी है, और वह दूसरी रकअत में दूसरा सूरह पढ़ने के बाद रुकू से पहले की जगह है। यहाँ पर जो दुआ की जाती है इसी को धर्म की ज़बान में 'क़ुनूत' कहते है। इसे कुछ उलमा तो वाजिब (अनिवार्य/ज़रूरी) समझते हैं, मगर हदीसों से मालूम होता है कि ये वह सुन्नत (वान्छनीव) है जिसे जहाँ तक हो सके ज़रूर करना चाहिए। कुछ रवायतों में इसके लिए ये कहा गया है– *'' सुन्–न–तुव वाजिबतुन''* यानि ''वह एक सुन्नत है जो वाजिब व ज़रूरी है''।

क़ुनूत के लिए शरीयत (शास्त्र) के लिहाज़ से कोई शब्द नहीं रखे गये हैं, मगर कम से कम ये क़ुनूत हदीस में आया है– *''अल्ला हुम्मग़् फ़िर् लना वर हम्ना व आफ़िना वा'फु अन्ना फ़िद्दुनया वल आख़िरह इन्–न–क अला कुल्लि शैइन क़दीर''*

ये क़ुनूत इस्लाम के उस मक़सद को ज़ाहिर करता है, जिसे उसने मिसाल के तौर पर अपने मानने वालों के लिए पेश किया है कि वह न दीन को भुलाएं और न 'दुनिया' को बल्कि 'दीन व दुनिया' दोनों की कामयाबी चाहते हैं, यह 'दुआ' इसी ख़ास बात को अपने अन्दर लिए हुए है।

पहले तो आदमी अपने पहले की कमियों को याद करके उनकी माफ़ी चाहता है, ''ऐ ख़ुदा! हमको मुआफ़ कर दे और हम पर रहम कर'' इसके बाद अपने आगे की भलाई चाहता है और कहता है *''वआफ़िना व'फु–अन्ना''*, और हमको सलामती (ठीक रखना) और हमको मआफ़ कर दे।'' *''फ़िद्दुन्या वल्–आखिरह''*, यह पहले दोनों जुम्लों से ताआल्लुक़ रखता है। दो चीज़ें *''वा–आफ़िना व'फु–अन्ना''* ''हमको सलामती दे और हमको माफ़ कर दे'' इसके बारे में क्रम से दोनों लोक ज़ाहिर किये गए हैं।, *'' फ़िद्दुन्या वल्–आख़िरह''*, दुनिया और आख़ेरत (परलोक) में, यानी दुनिया में सलामती और आख़ेरत में माफ़ी। अब यह ख़्याल नहीं करना चाहिए कि इबादत करने वाले भक्तों और परहेज़गारों साधुओं को ''दुनिया'' की सलामती से क्या लेना देना?

यह बिल्कुल सही नहीं है क्यों कि ज़िन्दगी,

सेहत और सलामती सब ख़ुदा की नेमतें हैं जो अगर सही तरह इस्तेमाल हों तो यही ख़ुदा की ख़ुशी (अच्छा) और आख़ेरत की कामयाबी (मुक्ति) की वजह भी बन सकती हैं। यह बिल्कुल मामूली सोच होगी कि अगर आदमी यह ख़्याल करें कि इस दुनिया में हम तकलीफें झेलें तो अच्छा है या यह सोचे कि छुटपने में मौत आ जाए और दुनिया से चला जाए तो अच्छा है, अगर यही अच्छा होता तो ख़ुदकुशी/आत्म हत्या और वह चीज़ें जो सेहत को नुक़सान पहुँचाती हैं उनका करना शरीयत की तरफ़ से जुर्म न होता। इन चीज़ों के बारे में बन्धन लागू करने ही से ज़ाहिर होता है कि हमारी ज़िन्दगी , हमारा बाक़ी रहना और हमारी सलामती उसे मनजूर है। इसी लिए ज़िन्दगी और सेहत पर ख़ुदा का शुक्र करने (धन्यवाद) का मौक़ा है। बेशक उपरी नज़र से देखने पर ख़ुदा के पहचानने वाले बन्दों की यही शान मालूम होती है कि वह दुनिया के चैन आराम और सलामती को कुछ न समझे लेकिन ख़ुदा की नेमत की क़द्र और भारीपन के समझने वाले इन चीज़ों को भी अपनी जगह अहम समझते हैं। एक मरतबा हज़रत इमामे हसन (अ0) से तज़केरा हुआ कि अबूज़र ग़िफ़ारी कहते हैं कि मैं बीमारी को सेहत से, तकलीफ़ को राहत से और ग़रीबी दरिद्रता को धन दौलत और मालदारी से ज़्यादा चाहता हूँ। इमाम ने फ़रमाया कि जो भी ख़ुदा के चुने पर भरोसा करे उसे यह आरज़ू नहीं करना चाहिए कि जिस हाल में ख़ुदा ने रखा है उसके सिवा किसी और हाल की तरफ़ वह चला जाए। मतलब यह है कि हमें यह कहने का क्या हक़ कि बीमारी अच्छी या सेहत (स्वास्थ्य/Health), तकलीफ़ अच्छी या चैन, ग़रीबी अच्छी या धनी होना, बस जिस हाल में ख़ुदा रखे वही सबसे अच्छा है। इस लेहाज़ से ख़ुदा से दुनिया के लिए भी दुआ मांगना चाहिए और आख़ेरत के लिए भी, और कुनूत की दुआ जो आप नमाज़ में पढ़ते हैं उसमें यह दोनों मतलब शामिल है।"

"इन्–न–क अ़ला कुल–लि शैयिन क़दीर"

"तू हर बात पर क़ादिर सर्वशक्तिमान है यानी तू हर चीज़ पर बस रखता है, चाहे दुनिया का मतलब हो और चाहे आख़ेरत के, सब तेरे ही क़ब्ज़े Control में हैं।

रूकू व सजदे

सुरे पढ़ने के बाद और दूसरी रकत में कुनूत के बाद इन्सान ख़ुदा की बड़ाई के एहसास को ज़्यादा ज़ाहिर करते हुए झुक जाता है, और कहता है, *"सुब्हा–न रब्बियल् अ़ज़ीमि व बिहम्दिही"*

"हर त्रुटि कमी से पाक है परे है, मेरा पालनहार जो बड़ा महानता वाला है और हम्द (संस्तुति/सराहना) वाला है।" रूकू के बाद सर उठता है और यह विचार होता है कि मेरे हम्द सराहना और तसबीह (ख़ुदा के पाक होने का एलान) का कोई सुनने वाला भी है, तो फ़ौरन ख़ुदा के 'समीअ़' (यानी ख़ुदा हर चीज़ का सुनने वाला है) होने का यक़ीन निश्चय सामने आ जाता है और कहता है *"समिअ़ल्लाहु लिमन्–हमिदह"* "अल्लाह" उसकी आवाज़ (पुकार) सुनता है जो उसकी हम्द करे"। ये उस ध्यान को जगाना है कि जिसे नमाज़ में आने के वक़्त इमाम (अ0) ने इन लफ़्ज़ों के ज़रिए पैदा करना चाहा था कि, तुम यक़ीन निश्चय जानो कि ख़ुदा के सामने हो, तुम उसे नहीं देख रहे हो तो वह तुम्हें देख रहा है। देखने की बात काम से जुड़ी होती हैं। यहाँ उसी एहसास को पैदा किया गया है कि जो कुछ तुम कहते हो उसको ख़ुदा सुन रहा है। यह कहते–कहते ख़ुदा की बड़ाई और ऊँचाई का इतना असर पड़ता है कि बन्दा मुँह के बल ज़मीन पर सजदे के लिए गिर पड़ता है। याद रखिए कि रुकू के बाद ही सीधे सजदे का हुक्म होता तो उसकी महानता के सम्मान की शान उतनी ही ज़ाहिर होती जितनी उस खड़े होने की हालत से सजदे में जाने में होती है। बन्दा जितना झुकता है उतना ज़्यादा वह ख़ुदा की बड़ाई और ऊँचाई को ज़ाहिर करता है। रूकू का दरजा आधे शरीर तक झुकने का था और सजदा उसकी आख़िरी हद है इसलिए हम्द सराहना के शब्दों में फ़र्क़ था वहाँ (रूकू में) *"सुबहा–न रब्बि–यल् अ़ज़ीमे वबिहम्दिह* था यानी उसको 'अज़ीम' (महानता वाला) कहा गया है, जिससे 'अ़ज़मत' महानता ज़ाहिर होती है और यहाँ (सजदे में) *"सुब्हा–न रब्बियल आ़ला वबिहम्दिह"* है यानी उसको आला (सबसे ऊँचा/सर्वोच्च) कहा जा रहा है जिसमें ऊँचाई के गुण (ख़ासियत) को बढ़ती (Superlative Degree) के साथ कहा गया है। *" अल्–आ़ला"* यानी "उच्चतम और सबसे ऊँपर" सजदे से सर उठाया तो ख़ुदा की

(बाक़ी पेज नं0 14 पर................)

कांपने लगता था और चेहरे का रंग पीला पड़ जाता था। हर वक्त ज़िक्र खुदा (ईश्वर की याद, ध्यान) में गुजरता था। अगर बच्चे सो जाते थे तो आप पंखा झला करतीं और कुरआन भी पढ़ा करती अक्सर रोटी पकाते समय भी कुरआन पढ़ा करतीं। इसका मतलब यह है कि ज़िन्दगी का कोई वक्त यादे खुदा से खाली नहीं रहता था। हमारे यहां की औरतें ऐसे वक्त में अगर कोई पास हुआ तो इधर उधर की व्यर्थ बातें किया करती हैं और अगर अकेली हैं तो गुनगुनाया करती हैं।

लड़कियो! जनाबे फातमा[स०] की इतनी इबादत का मतलब यह है कि हमें पैदा करने और पालने वाले का शुक्रिया अदा करना चाहिए, हमारी इबादतें उसका शुक्रिया है। वरना हमारी नमाज़ों और इबादतों की अल्लाह को कोई आवश्यकता नहीं है।

रिज़ाए इलाही (भगवान की खुशी)

जनाबे सय्यदा ने अपने हुस्ने–अमल से अल्लाह की रज़ामन्दी हासिल कर ली थी। जिसका सुबूत यह है कि सय्यदा की कोई बात कभी ख़ाली नहीं गई जिसके लिए उसकी बारगाह में दुआ की हो वह पूरी ज़रूर हुई।

रमज़ान का महीना खत्म हो रहा था और ईद की तैयारी की जा रही थी जो मुसलमानों के लिए बड़ा त्योहार समझा जाता है और जिसमें हर अमीरो गरीब नए कपड़े पहनता है। हज़रत हसन और हज़रत हुसैन की, जिनकी उम्र अभी छोटी थी, जब मालूम हुआ कि कल ईद का दिन है तो दौड़े हुए अपनी मां के पास आए और अपने लिए अच्छे–अच्छे कपड़ों की फरमाइश (चाहत) की। इस अवसर पर मां का दिल ज़रूर बेक़रार हो गया होगा इसलिए कि घर में नए–नए लिबास कहां थे। बच्चों की फ़रमाइश सुनकर बीबी सय्यदा चुप हो गई मगर जब बच्चों ने इसरार किया तो आपने फ़रमाया, "तुम्हारे कपड़े दर्जी के पास हैं।" बच्चे मां की बात से मुतमइन होकर सो गये। रात गुजरती रही और ईद की सुबह आई। किसी ने दरवाज़े पर पुकार कर कहा, "बच्चों का दर्ज़ी कपड़ लाया है।" बच्चे खुश होकर बाहर गये और कपड़े लेकर वापस हुए। मां ने यह देखकर शुक्र का सज्दा किया और बच्चों को नहला–धुला कर, और नये कपड़े पहना कर मस्जिद में भेज दिया। चूंकि बीबी फात्मा की जबान से निकल गया था कि तुम्हारे कपड़े दर्जी के पास हैं खुदा ने उसको सच कर दिखाया और एक फ़रिश्ते को हुक्म दिया कि जन्नत से हसन और हुसैन के लिए कपड़े ले जाए और कहे कि दर्ज़ी कपड़े लाया है।

लड़कियो ! बीबी सय्यदा की यह फज़ीलत (उत्कृष्टता, श्रेष्ठता) और यह रूत्बा (कोटि) खुदा की खुशनूदी के कारण प्राप्त हुआ जिसके शुक्राने (धन्यवाद) में वह सदैव इबादते खुदा और इताअते रसूल (रसूल का आज्ञा पालन) में तल्लीन रहती थीं।

इस वाकए के अलावा बहुत से ऐसे दूसरे वाक़ेयात भी हैं जिनके द्वारा और भी उदाहरण पेश किये जा सकते हैं मगर इससे शिक्षा प्राप्त करने औरउस पर अमल (पालन) करने के लिए केवल यही एक वाकया काफ़ी है। खुदा करे तुम्हारे दिलों में भी इबादते–खुदा और इताइते–रसूल का जज़्बा (भावा) जागृत हो।

गरीबी में सन्तोष

बीबी फ़ात्मा ने हमेशा अपनी आवश्यकताओं पर दूसरों की आवश्यकताओं को महत्व दिया। अपना खाना भूखों को खिला देती थीं और भूखी रहा करती थी। हम एक वाक़ेया ऐसा लिखते हैं जिससे मालूम होगा कि बीबी फात्मा को गरीबी और निर्धनता, और भूख और प्यास की हालत में भी कितना इतमीनान रहता था। न चेहरे से परेशानी ज़ाहिर होती थी न ज़बान से अपनी हालत दूसरों को बताती थीं।

(जारी............................)

(पेज नं0 6 का बक़िया...................)

महिमा, के सामने अपने फ़र्ज़ (कर्त्तव्य में) कमी का एहसास हुआ। यूँ जुर्म को मानते हुए माफ़ी चाही, तो कहा *"अस्तग़फ़िरूल्ला–ह रब्बी व–अतूब इलैह"*, माफ़ी चाहता हूँ अल्लाह से जो मेरा पालनहार है और उसके दरबार में तौबा (पछताव) करता हूँ । उन गुनाहों की माफ़ी की दरख़्वास्त करने के साथ फिर एक बार उसकी अज़मत व बुजुर्गी पर माथा ज़मीन पर रखने की ज़रूरत महसूस हुई और दूसरा सजदा किया और फिर पहले की तरह उसकी ऊँचाई ज़ाहिर की।

(जारी...................)